मुख्य बिंदु

पांव के कांटे, रूह के नश्तर जीवन—जीवन बिखरे हैं—तुम्हारे पांव कांटों से भरे हैं—और तुम्हारे हृदय भी। तुम्हारे पांवों पर फफोले हैं—और तुम्हारे हृदयों पर भी। और तुम्हारे पांवों में जख़्म हैं—और तुम्हारी आत्माओं में भी। अपने को ही देखो। जरा अपने को ही खोलो। जरा अपने ही संबंध में सीधा-सीधा साक्षात्कार करो। तो तुम ऐसा न पाओगे कि संत दुखवादी हैं। तुम इतना ही पाओगे कि संत यथार्थवादी हैं। जैसा है, उसको वैसा ही कहते हैं। झुठलाते नहीं हैं। भ्रम पैदा नहीं करते हैं। दुख को दुख कहते हैं।

तुम? बेईमान हो। तुम दुख को भी सुख कहे चले जाते हो। तुमने औपचारिकतायें सीख ली हैं। तुमने धीरे-धीरे शिष्टाचार सीख लिये हैं। किसी से कहो : कैसे हो? वह कहता हैं : बड़ा सुखी हूं। तुम्हें भी भ्रांति हो जाती है।

तुमसे कोई पूछता है : कहो, आप कैसे हैं? आप कहते हैं : आनंद में हैं, बड़े मस्त हैं। न तुम सच बोल रहे हो, न वह सच बोल रहा है। और दोनों एक-दूसरे को धोखा खड़ा कर रहे हो।

यह बात सच है—तुम जो कह रहे हो कि सब ठीक है? सब ठीक हो जाये तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ। सब ठीक है, तो फिर बचा क्या? फिर तो परमात्मा मिल गया। परमात्मा मिलने पर ही सब ठीक होता है।

और तुम जब कहते हो : बड़ा मस्त हूं; सब आनंद से चल रहा है; मजा-मौज है; तब तुम क्या कह रहे हो? तुमने सच न बोलने की कसम खा ली है? हालांकि मैं समझता हूं कि अब दूसरे के सामने दुख रोने से भी क्या प्रायोजन है? तो कह दिया कि भाई चलो...। अब यह कोई ऐसा गंभीर प्रश्न था भी नहीं। उसने पूछा भी नहीं था इसलिए। यह मैं जानता हूं।

रास्ते पर कोई मिल गया। जय रामजी की। उसने पूछा : कहिये, कैसे हैं? तो वह यह भी नहीं कह रहा था कि अब घंटेभर तुम्हारे दुख का रोना सुनने के लिए पूछा है। वह यह भी नहीं कह रहा था कि अच्छा बैठो। तो अब सब अपनी, एक्स-रे वगैरह, और अपने सब ले आता हूं, सब दिखा देता हूं कि हालत कैसी है!

प्रिय ओशो को नमन् : स्वामी ध्यान पूर्णम्, नई दिल्ली

काव्य और सत्य

उसने इसलिए पूछा भी नहीं था। वह तो औपचारिक ही था। और तुमने औपचारिक उत्तर दे दिया। उसमें भी मुझे एतराज नहीं है। लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ जाना, क्योंकि बार-बार दोहराने से ऐसा लगता है कि यही सच है।

रोज-रोज दोहराते हो। जो मिला, वही पूछा है तुम कहते हो : बड़े मजे में हूं। धीरे-धीरे तुमको खुद ही भ्रांति होने लगती है, निरंतर दोहराने से, कि मजे में हूं, मजे में हूं। इस तरह का एक सम्मोहन बैठ जाता है।

कभी अपने हृदय का घूंघट खोलकर देखो। 'पांव के कांटे रूह के नश्तर जीवन-जीवन बिखरे हैं, मेरे अहद के इन्शां हैं या ज़ख्म के खिरमन बिखरे हैं।'

यहां तो ज़ख्म ही ज़ख्म के खलिहान हैं। चारों तरफ ज़ख्म के खिरमन बिखरे हैं। 'हिम्मत हो तो झांक के देखो हस्ती की महराबों से।' हिम्मत हो तो, तो ही यह हो सकता है देखना।

हिम्मत हो तो झांक के देखो हस्ती की महराबों से
वक्त है वह दीवार कि जिसमें दर्द के रोजन बिखरे हैं।

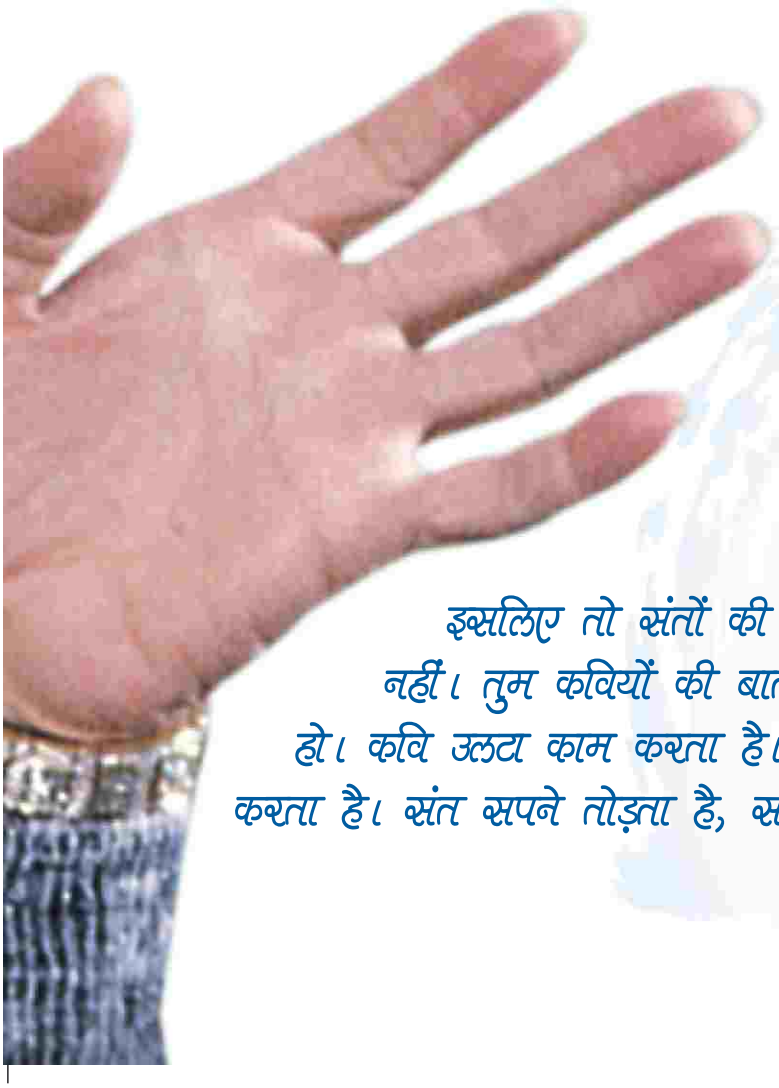

यहां समय की दीवार में दर्द ही दर्द के छेद हैं। गौर से देखो। मगर हिम्मत हो तो ही कोई देख सकता है। गैरहिम्मती तो भागा चला जाता है। वह खड़ा ही नहीं होता कि खड़े हुए तो कहीं कुछ दिखाई न पड़ जाये। वह तो कुछ-कुछ काम में उलझा रहता है। उलझे न रहे, तो कहीं कुछ दिखाई न पड़ जाये!

भीतर सांप-बिच्छू चल रहे हैं। और तुम चांद-तारों की बातें किये चले जाते हो। भीतर जहर ही जहर है, और तुम अमृत के गीत गाये चले जाते हो। धीरे-धीरे तुम गीतों में ही सोचने लगते हो कि सब मिल रहा है। प्रेम जाना ही नहीं है और प्रेम की कहानियां पढ़ते रहते हो। कहानियों में ही खो जाते हो।

नग्मों पर सर धुननेवाले, साज का सीना चीर के देख
गीत का चंचल रूप बदल कर रूह के शेवन बिखरे हैं।

यहां गीतों के नाम पर जो चल रहा है, अगर उनका सीना चीर कर देखोगे, तो तुम पाओगे कि हर गीत के भीतर रोना छिपा है। हर गीत के भीतर आंसू छिपे हैं। यह आंसुओं को छिपाने की तरकीब है तुम्हारे गीत, और तुम्हारे उत्सव और तुम्हारे साज-समारोह।

मुझसे मेरे दौरे-जुनूं के नागुफ्ता हालात न पूछ
जलते आंसू, भीगे शोले, दामन-दामन बिखरे हैं।

संत कोई दर्शन प्रस्तावित नहीं कर रहे हैं कि जीवन दुख है। ऐसी उनकी जीवन की व्याख्या नहीं है। ऐसा उनके जीवन का अनुभव है।

तुम पूछते हो : 'संत पुरुषों ने जीवन को सदा दुख की भांति क्यों निरूपित किया?' क्योंकि जीवन दुख है। संत करें भी तो क्या करें?

इसलिए तो संतों की बात तुम सुनते नहीं। तुम कवियों की बात सुनना पसंद करते हो। कवि उलटा काम करता है। वह जिंदगी के सपने खड़े करता है। संत सपने तोड़ता है, सत्य का दिग्दर्शन करता है। कवि प्रेम के गीत गाते हैं, प्रेम की कहानियां लिखते हैं। और तुम कभी इन कवियों से मत मिल जाना, नहीं तो तुम इनके जीवन में न प्रेम पाओगे और न कोई गीत पाओगे।

अक्सर कवियों से मिलकर बड़ी
निराशा होती है।
इनका गीत

इसलिए तो संतों की बात नहीं। तुम कवियों की बात हो। कवि उलटा काम करता है। वह करता है। संत सपने तोड़ता है, सत्य का

तुम सुनते सुनना पसंद करते जिंदगी के सपने खड़े दिग्दर्शन करता है। कवि

बीड़ी पी रहे हों बैठे कहीं और उनकी शक्ल पर मक्खियां उड़ रही हों। मरघट छाया हो। और तुम्हें भरोसा ही न आये कि ये सज्जन—इतना ऊंचा गीत कैसे गाये? असल में वह गीत अपने को भुला रखने का उपाय है। ऐसा हुआ नहीं है। प्रेम हुआ नहीं है, तो प्रेम का गीत गा-गा कर अपने को समझा रहे हैं। प्रेम से चूक गये हैं, तो प्रेम का गीत गाकर मन को भुलावा दे रहे हैं। यह कोरी बातचीत है।

कवि लोगों को भ्रमजाल में उलझाये रखते हैं; लोगों की आशाओं को उकसाते रहते हैं। लोगों को खयाल दिलाते रहते हैं कि कुछ हो सकता है। जरा कुछ कोशिश करो, तो हो जाये। थोड़ी मेहनत करने से हो जायेगा। लोगों की आशा को जगाये रखते हैं।

संत तो लोगों को वही दिखा देते हैं, जैसा है अगर मौत आ रही है, तो संत कहता है : मौत आ रही है। संत तुम्हें ले जाता है मरघट पर। दिखा देता है कि यही असलियत है; यही जीवन का अंत है।

हालांकि तुम संत से नाराज होओगे। क्योंकि वह तुम्हारी आशायें तोड़ता है। और आशायें तोड़कर तुम्हारे बदलने का उपाय करता है।

कवि से तुम नाराज नहीं होते। कवियों का तुम सम्मान करते हो। तुमने देखा : एक भी कवि को कभी सूली नहीं दी गयी। कवियों का लोग सम्मान करते हैं, नोबल प्राइज देते हैं।

एक भी संत को नोबेल प्राइज नहीं मिली। संतों को सूलियां लगती हैं—कि जीसस, कि मंसूर, कि सुकरात—कि संतों पर पत्थर फेंके जाते हैं। कवियों को सम्मान मिलता है! और कवि सिर्फ झूठ का धंधा करता है। उसका व्यवसाय झूठा है। वह झूठ को खूब सौंदर्य से प्रगट करता है। वह झूठ को खूब शृंगार करता है। झूठ को खूब रंग-रोगन लगाता है। वह झूठ को ऐसा जीवित बना देता है कि सच जैसा मालूम पड़ने लगता है।

संत का सारा ध्येय सत्य को नग्न करके तुम्हें दिखा देना है। और जब सत्य को नग्न करके दिखाया जाता है, तो अड़चन होती है।

तुमने कभी देखा, कभी अस्पताल गये, वहां देखा, हड्डियों का अस्थिपंजर खड़ा हुआ। तो तुम्हें खयाल नहीं आया कि यही अपने भीतर है? घबड़ाहट नहीं होती? घबड़ाहट होती है। थोड़ा डर भी लगता है कि यह अपनी हालत हो जानेवाली है कल! और असलियत में यही हालत है। चमड़ी के भीतर यही छिपा है—यही अस्थिपंजर।

संत तुम्हारी चमड़ी उघाड़ कर तुम्हारे भीतर की सच्चाई जाहिर कर देता है। वह कहता है : यह है। और कवि तुमसे बातें करता है, तुम्हारी संगमरमरी देह, तुम्हारी सोने की काया...। जंचती है बात—कि

एक भी संत को नोबेल प्राइज नहीं मिली। संतों को सूलियां लगती हैं—कि जीसस, कि मंसूर, कि सुकरात—कि संतों पर पत्थर फेंके जाते हैं। कवियों को सम्मान मिलता है! और कवि सिर्फ झूठ का धंधा करता है। उसका व्यवसाय झूठ है। वह झूठ को खूब सौंदर्य से प्रगट करता है

यह बात ठीक है। संत की सुनो। वह कहता है कि मल-मूत्र के सिवाय यहां कुछ भी नहीं है। कहां की सोने की बातें कर रहे हो? कौन-सी संगमरमरी देह? कहां की बातें कर रहे हो? किन सपनों में खोये हो? यहां मल-मूत्र भरा हुआ है।

मल-मूत्र की बात तुम्हें जंचती नहीं। हालांकि सच यही है। इसे झुठला न सकोगे। यही सच है। अगर तुम्हारी देह खोलकर रख दी जाये, तो बड़ी घिनौनी मालूम पड़ेगी। घबड़ा जाओगे। यह तो चमड़ी के पीछे पड़ी है, इसलिए पता नहीं चलता।

जब तुम किसी स्त्री के प्रेम पड़ते हो, तो तुम कवि की बातें मानना पसंद करोगे। संत की बातें मानकर तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी।

संत तो तुम्हें एक्स-रे वाली आंखें दे देता है। वह तो तुम्हें ऐसी आंखें दे देता है कि तुम जहां भी देखोगे, वहीं अस्थिपंजर दिखाई पड़ेगा। यहीं देखो, अपने पास में जरा गौर से देखना, अस्थिपंजर दिखाई पड़ेगा।

हड्डी, मांस, मज्जा, मल-मूत्र! सच्चाई तो वही है। यथार्थ तो वही है। और यथार्थ की सीढ़ियों से चढ़कर ही कोई आदमी परमात्मा तक पहुंचता है। कविताओं से सीढ़ियां नहीं बनतीं। कवितायें तो कोरी बातें हैं।

तुम पूछते हो : 'संत पुरुषों ने जीवन को सदा दुख की भांति क्यों निरूपित किया है?' क्योंकि सदा उन्होंने दुख की भांति जाना।

फिर तुम यह भी पूछते हो कि क्या यह दुखवाद उचित है? यह दुखवाद है ही नहीं। यह तो यथार्थवाद है। और जैसा है, उसको जानना पड़ेगा। जैसा है वैसा जानना पड़ेगा। वैसा ही जानकर तो तुम आगे जाओगे।

अगर शरीर तुम्हें व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा, तो ही तो तुम आत्मा की खोज करोगे। और अगर संसार तुम्हें व्यर्थ दिखाई पड़ेने लगेगा, तो ही तो तुम परमात्मा की याद करोगे।

संत की आकांक्षा यही है कि तुम कूड़े-करकट में न उलझे रहो, यहां हीरे-जवाहरात भी छिपे हैं। लेकिन अगर तुम कूड़े-करकट को हीरे-जवाहरात समझते रहे तो कब खोजोगे? हालांकि मोती खोजने हों, तो कंकड़-पत्थर छोड़ने पड़ेंगे। ये रंगीन पत्थर काम नहीं आयेंगे, और सागर में गहरी डुबकी लगानी पड़ेगी।

जो गहरे जाता है, वही पाता है। मगर पहले तो तट से छूट जाना जरूरी है। व्यर्थ को व्यर्थ की भांति जान लेना, सार्थक की दिशा में पहला कदम है।

—ओशो

कहै कबीर मैं पूरा पाया

सोलहवां प्रवचन, चौथा प्रश्न

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)